International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 12 Issue 02 February- 2022
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

वैष्णव चेतना की संकल्पना एवं भारतीय साहित्य में इसका प्रयोग

सुरज भान

प्रवक्ता हिन्दी

शिक्षा विभाग, हरियाणा सरकार

प्रस्तावना

व्युत्पत्ति के आधार पर वैष्णव शब्द का अर्थ है जिसका देवता विष्णु है। विष्णु शब्द के आगे 'सास्य देवता' इस सूत्र से अण् प्रत्यय लगाकर निष्पन्न हुआ है। लिङ्. पुराण में भी यही व्युत्पत्ति प्राप्ति होती है।[1] पद्म पुराण में वैष्णव का सम्बन्ध धर्म के साथ जोड़ा गया है।[2] वैष्णव शब्द साम्प्रादयिक दृष्टि से सर्वप्रथम महाभारत के 18 वें पर्व में मिलता है।[3]

वैदिक साहित्य में विष्णु जीवन के आधार भूत तत्वों के साथ एक रूप देखने की चेष्टा लक्षित होती है। अन्न4 धृत5 मधु6 को विष्णु रूप स्वीकार किया गया क्योंकि ये मानव जीवन के आधार है। इस प्रकार मानव जीवन का जो आधार है वही 'विष्णु' है को मान्यता मिली है। 'महाविक्रमशाली' देव एवं मानवों के 'अजेय रक्षक'7 सभी देवताओं में श्रेष्ठ है।8 विष्णु चरित आदर्शो के अनुरूप ही वैष्णव धर्म की रूपरेखा विकसित हुई।

और वैष्णव धर्म के प्राचीन अमिधान भागवत धर्म, पाञ्चरात्र—मत, नारायणीय' ऐकान्तिक एवं सात्वत है।

इसी वैष्णव शब्द से वैष्णवता, वैष्णवीय भाव, वैष्णव चेतना आदि शब्दों का प्रादुर्भाव हुआ है। वस्तुतः वैष्णवता या वैष्णव चेतना का स्वरूप अत्यन्त व्यापक है यह मानव श्रेष्ठ की सर्वाधिक कोमल, सर्वोपरिभाव, नैसर्गिक वृति, अनुष्ठित कर्म संस्कार एवं आचारों का बोधक है। वास्तव में वैष्णवता किसी धर्म का पोषक नहीं है यह तो धर्म से सम्प्रदाय से जातिवाद से वाग्वितंडावाद से ऊपर की चीज है।

वैष्णववीय भाव में मनुष्य, जाति, समाज या विश्व सृष्टि का कण–कण अपने समर्पित भाव में आपके सामने प्रस्तुत होता है। एक क्रोंच पक्षी के वध से 'वाल्मिकी जी' का हृदय जिस करूणा भाव से दृवीभूत होकर आदि श्लोक को जन्म देता है वह वैष्णवीयता ही है। बौद्ध धर्म का बहुजन हिताय व जैन धर्म का अंहिसा परमो धर्माः का उद्घोष भी वैष्णवीय भाव ही है।

इस प्रकार देखा जाय तो यह वैष्णवीय चेतना या भाव शाश्वत है जिसका प्रभाव सभी धर्मो पर अनिवार्य रूप से विद्यमान है। पर्यावरण से अभिन्नता, परदुखकातरता, मानवतावाद 'अहिंसा परमों धर्मः जैसी चेतना का उदात्त भाव वैष्णवीयता ही है। और इस भाव में डूबा हुआ वैष्णव है। ''वैष्णव अकेला ही कल्याणी सृष्टि का यात्री नहीं बनाना चाहता है। वह अपने साथ समग्र समाज को रसाप्लवित करता हुआ सभी को साथ ले जाने का प्रयत्न करता है।''

''जबकि सांसारिक – सुख भोग, देश, सेवा, स्वराज्य प्राप्ति, परोपकार, विश्व बंधुत्व, वर्गहीन समाज, रामराज्य इन तक हमारा आदर्श समाप्त हो जाता है भक्त का आदर्श कहीं उच्चतर है वह देश, भूमण्डल और सारे विश्व को प्रभु तक पहुंचाना चाहता है।[9]

अपने को भगवान जैसे अखिल विश्व के अधिपति के प्रति समर्पित करने की भावना में समाज, मनुष्य जाति एवं सारे विश्व के प्रति जो समर्पण भाव अपने आप आ जाता है। यही समर्पण भाव वैष्णवता है। जो हमारी प्रवृत्ति को उच्च शक्तिशाली दिशा प्रदान करती है। श्री नरेश मेहता जी काव्य का वैष्णव व्यक्ति में इसी वैष्णवता को स्पष्ट करते हुए कहते है–

''मानवीय करुणा और जैविक अंहिसा की भावनात्मक रासलीला वैष्णवता है। अणु मात्र में जीवन का स्पन्दन अनुभव करना दार्शनिक प्रतीति है परन्तु उसके साथ कुल गोत्रता, बन्धु–बान्धवता अथवा सुख दुःखमय आत्मीयता अनुभव करना वैष्णवता है। ऐसी

वैष्णवता व्यक्तित्व को भागवत बनाती है''[10] और गांधी दर्शन के इस भाव ''वैष्णवजन ते तेणे कहिए जे पीर परायी जाणे रे'' में बदल जाती है।

वैष्णवीय चेतना का भारतीय साहित्य में प्रयोग

भारतीय साहित्य के आदि ग्रंथ वेदो से यह वैष्णवीय चेतना आद्यन्त प्रवाहित है। विश्वबन्धुत्व की भावना का मूल ''संगच्छध्वं से वो मनांसि जानताम्''[11]

ऋग्वेद में दिखाई देता है। वेदो में राष्ट्रीय उन्नति के साथ विश्व–कल्याण तथा विश्व बंधुत्व को महत्व दिया है यह उसके वैष्णवीय भाव को स्पष्ट करता है। वेदों में मनुष्य के महत्व को स्वीकारा गया है ऋग्वेद के दर्शन मण्डल में 'पुरुष सूक्त' में कहा गया है

पुरुष सबके ऊपर है ''पुरुषान्न पर किंचित'' मनुष्य को जानने के लिए उसकी गहराई में जाना एक ऊँचें धरातल पर मानव मूल्य को स्थापित करना एवं उसे हर दुख से मुक्त करवाना वैदिक मनीषियों को अभीष्ट था।[12]

मानव मात्र की समता को ऋग्वेद में स्थान दिया गया है

''अज्येष्ठासो अफनिष्ठासएते, सम्भ्रान्तरो वावृधुः सोम गाय।
युवा पिता स्वसा रुदृ एवां सुदुधा, पृशिनः सुदिना करुदभयः।।[13]

अथर्व वेद में इसी विचार को आगे बढ़ाया गया है–

''सहृदयं सामनस्रभ विदवेष कृणोमि वः।
अन्योडन्यमभिहर्यत वासं जात मिवाध्न्या।।[14]

और दानशीलता के विशिष्ट महत्व का भी उल्लेख है

''शत हस्त समाहार समस्त्र हसत से फिर[15]

इस प्रकार उपनिषदों से बहती हुई यह वैष्णवीय चेतना आदि कवि बाल्मीकि की 'रामायण' में भी प्रवाहित होती दिखाई देती है–

उनके काव्य नायक राम लोक कल्याण में रत है ''समस्त जीव लोक के प्रति कारुण्य भाव राम का परम ध्येय है। ..... सत्य और धर्म के सफल आराधक राम अर्थ को ठुकराकर लोक का आश्रय लेते हैं।''[16]

राम में लोक कल्याण की भावना के साथ–साथ समता–ममता व मैत्री का भाव भी अपने उत्कृष्ट रूप में दिखाई देता है। निषाद को देखकर व्याकुल होना, शबरी के झूठे बेर खाना, जटायु पर ममता, लौकिक दृष्टि से सामान्य प्राणी वानरों से मित्रता, गिलहरी की अंकिंचन शक्ति में भी विश्वास करना राम के अन्दर निहित वैष्णवीय भाव के अनुरूप है। राम की मानवता, ईश्वरीय द्विव्यता से कल्याणकारी है और उनकी गुणवत्ता भगवत्ता से भी बढ़कर गुणकारी है।

इसी प्रकार 'महाभारत' में भी मानव की श्रेष्ठता को स्थापित करने वैष्णवीय भाव उपस्थित है। भीष्म पितामह युधिष्ठिर से कहते है कि मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं।

''गुहयं ब्रहम तदिदं ब्रमीमि।
न मानुषात् श्रेष्ठतर हि कश्चित्।।''[17]

और व्यास जी सभी प्राणियों के सुख के लिए आह्वान करते हैं कि,

''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुख भागभवेत्।।

अर्थात सभी प्राणि सुखी हो, सब परम आनन्द प्राप्त करें, सब भले दिन देखे, कोई भी दुख न पाए।

नाथ–सिद्ध परम्परा में भी यही वैष्णवीय चेतना जात–पात, छुआ–छूत, ऊँच–नीच आदि का निर्भीकता से खण्डन करते हुए सामाजिक विद्वेष दूर कर एक उदार समतावादी समाज की स्थापना का प्रयत्न करती है। तथा मध्यकालीन भक्ति साहित्य ने अपने भावों को परिष्कृत कर नए रूप में प्रकट होती है। इस मध्यकालीन भक्तिकाल के प्रमुख स्तम्भ कबीर

है जिन्होंने पीड़ित मानवता का पक्ष लिया। उन्होंने उन सभी मान्यताओं का खण्डन किया जो मानवतावाद के प्रतिकूल थी। समता, मानव कल्याण पर बल देने वाले कबीर करुणा के सिद्धांत को महत्वपूर्ण मानते थे–

''कबीरा सोई पीर है जो जानई पर पीर

जो पर पीर न जानई सो काफिर वे पीर।।''

इसी तरह नानक, दादू, रैदास, धर्मदास, मूलकदास, सुन्दरदास, नामदेव आदि संतो ने जात–पात, छुआछूत आदि का खण्डन कर मानवतावादी मूल्यों की स्थापना की। नानक ने तो स्पष्ट घोषित किया कि ईश्वर योग–तपस्या, सन्यास या धार्मिक कृत्यों से प्रसन्न नहीं होता वह तो केवल मानव सेवा तथा प्रेम से ही प्रसन्न होता है।

निर्गुण सन्तों ने वैष्णवीय चिन्तन का पोषण किया था वे मानववादी मूल्यों के संवर्द्धक व संरक्षक थे।

''सम्पूर्ण विश्व में मानववाद की कोई अन्य परम्परा नहीं है जो कि निर्गुण सन्तों की परम्परा से इसकी समृद्धि, विस्तार व गहनता तथा दीर्घ व अविच्छिन्न इतिहास से समानता करे।''[18]

सगुण भक्त कवियों का दृष्टिकोण भी वैष्णवीय चेतना से दीप्त था जो उदारतम मानवीय भावनाओं पर बल देता था–

''तुलसी के साहित्य मे मानववाद की चारों प्रमुख स्थापनाएँ बन्धुत्व और मैत्री की भावना को मजबूत करना, मानवीय स्वतन्त्रता के लिए लड़ना और उसे हासिल करना तथा विश्व स्तर पर श्रेष्ठ और उन्नत समाज व्यवस्था कायम करना, वैज्ञानिक रूप में नहीं अपितु आदर्श और श्रेष्ठतम व्यवस्था रामराज्य के ही परिवृत्त में दिखाई देती है, जिनकी स्थापना तुलसी आदर्श और पूर्ण राजा राम के माध्यम से रोकने का प्रयास करते है।''[19]

वस्तुतः उनके साहित्य में लोक से परलोक तक एक ही रागात्मक चेतना का विस्तार है– ''सिया राममय सब जगजानी''[20]

और मानव मात्र में नैतिक मूल्यों को स्थापित करने हेतु उनका साहित्य श्रेष्ठ है दृष्टव्य है–

''परहित सरिस धर्म नहिं भाई।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।''

रीतिकाल में वैष्णवीय चेतना परिसीमित हृदय का रागात्मक भाव वैयक्तिक स्तर तक ही रह गया। फिर भी केशव की 'रामचन्द्रिका' युग सापेक्ष दृष्टि के साथ ही परम्परा का निर्वाह करती है एवं व्यक्ति के मानवत्व बनाए रखने के गुण भी उसमें विद्यमान है। ''रामचन्द्रिका में कवि ने अनियमित एवं अति काम वृत्ति का विरोध किया है। इससे मानव अपनत्व तक को भूल जाता है।''[21]

''लोभ मद मोह बस काम जब ही भयो।
भूलि गयो रूप निज विधितिन सो गयो।।

केशव की 'रामचन्द्रिका' में वैयक्तिक मूल्यों की अपेक्षा सामाजिक मूल्यों का प्राधान्य है।''[22] ''रचना के आरम्भ के दुख क्यों टरि है[23] ''से निजी दुख की अपेक्षा जनजीवन का दुख वर्णित है। ''तुलसी के समान के शिव की साधना भी व्यक्तिगत न होकर लोकमंगल के लिए है।[24]

आधुनिक युग में भारतेन्दु जी का वैष्णव भाव जीवन–मूल्यों के प्रति पूर्ण सजगता में दिखाई देता है। वे सभी धर्मों के प्रति व्यापक एवं उदार दृष्टिकोण रखते है।

''वास्तव में भारतेन्दु की आत्मा केवल कृष्ण भक्ति में लीन भक्त की आत्मा न होकर 'सर्वधर्म सम भाव' युक्त प्रेमपूर्ण आत्मा है। कृष्ण के भक्त होने के साथ ही इनमें युगाानुकूल उदारता और हृदय विशालता भी है।''[25]

इसी कारण उनका साहित्य वैष्णवीय चेतना से आच्छादित है। और उनके कृष्ण दुखहारी है। यथा–

''कंठ–कौस्तुभ–धरन दुख हारी''

द्विवेदी युग में भी यह वैष्णवीय चेतना लोकहित, विश्व बंधुत्व की भावना, भव–हित की कामना लिए विकसित होती है। लोकहित मोक्ष की भांति जीवन का परम मूल्य है। 'हरिऔघ जी' के 'प्रिय–प्रवास' में सर्वाधिक लोकहित को ही महत्व दिया गया है। और इसी को जीवन का चरम लक्ष्य सिद्ध किया है दृष्टव्य है–

''जी से प्यारा जगत हित औ लोक–सेवा जिसे है।
प्यारा सच्चा अवनि–तल में आत्म त्यागी वही है।।[26]

और इसी प्रकार श्री हरिऔध जी 'वैदेही वनवास' में वैष्णविक चेतना का विस्तार करते हुए भव–हित की बात करते है–

''सर्वोत्तम साधन है उर में।
भव–हित पूत भाव भरना।।
स्वभाविक सुख–लिप्साओं की
विश्व प्रेम में परिणित करना।।[27]

इसी प्रकार मैथलीशरण गुप्तजी के साकेत में वैष्णवीय चेतना व्याप्त है–

''एक देश क्या, अखिल विश्व का
तात, चाहता हूँ मैं त्राण?[28]

और छायावादी युग में श्री वैष्णवीय चेतना अपने मानवतावादी मूल्यों के रूप में प्रवाहित होती रही–

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 12 Issue 02 February- 2022
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

''विश्व प्रेम के भाव भरे थे

चाव लोक संग्रह पर पूरा।

रहा किसी दिशा में भी तो

जग–सेवा का भाव अधूरा।।''[29]

जबकि प्रगतिवाद में यह वैष्णवीय चेतना अपने नैतिक आदर्शों के मूल्यों में बौद्धिकता का समावेश कर लेती है उदाहरणार्थः

''नित्य अहिंसा आदिक धर्मा, काल विवश जो होत अधर्मा

तैसेहि हिंसा आदि कुकर्मा, होत समय–वश जो सत्कर्मा।।[30]

क्योंकि हिंसा एवं अहिंसा का महत्व समयानुसार ही माना जा सकता है। स्वराज्य स्थापना, कर्म आदि शंकाओं की जीवन की वास्तविकता के आधार पर प्रतिष्ठा हुई लेकिन मानवतावादी मूल्यों की शाश्वती वैष्णवीय चेतना उसी रूप में प्रवाहित होती रही।

''कहेउ पितामह–''मम मत ताता। सिरजेउ जन–हित धर्म विधाता।

सर्व–लोक–हित–कर साइ धर्मा, जनहित नाशक सोई अधर्मा।''[31]

श्री केदारनाथ मिश्र'प्रभात' के काव्य 'कैकयी' में लोक सेवा, लोकनायकत्व, विश्ववन्धुत्व की भावना, धर्म एवं मानवतावादी मूल्यों से युक्त वैष्णवीय चेतना दिखाई देती है–

''पलकों से आकर पोछों

पृथ्वी का दग्ध शरीर

चमका दो फिर मानवता की

मिटती भाग्य लकीर।'' कैकयी (तृतीय सर्ग पृ. 159)

और ''यह अखिल सृष्टि मुस्कान एक

सेवा की मंजुल प्यार–भरी

सम्पूर्ण प्रकृति आनन्द–लहर

सेवा की चिर–झंकार–भरी।'' कैकयी (नवम सर्ग पृ. 144)

तो नई कविता में श्री नरेश मेहता के राम इसी मानवता के लिए 'संशय की एक रात' में साम्राज्य और यहाँ तक कि सीता का भी को भी स्वीकार नही करना चाहते–

''समर्पित है यह

धनुष, बाण, खड्ग और शिर स्त्राण

मुझे ऐसी जय नहीं चाहिए,

बाण बिद्ध पाखी सा विवश

साम्राज्य नहीं चाहिए,

मानव के रक्त पर पग धरती आती

सीता भी नहीं चाहिए।'' संशय की एक रात

और अतत: इसी मानवता के लिए पुन: युद्ध स्वीकार भी करते हैं।

''अब मैं केवल प्रतिश्रुत युद्ध हूँ।

निर्णय हूँ सबका/सबके लिए।/केवल अपने ही लिए/सम्भवत: नही। – संशय की एक रात अन्तत: देखा जाए तो वैष्णवता एक शाश्वत भाव है जो मानव की नैसर्गिक वृत्ति है। और इसी के कारण मानवता का विकास होता है मानव मानव के प्रति हित का भाव रखता है इसी से विश्व कल्याण की भावना का भी विकास होता है और इसी वैष्णवीय चेतना का भारतीय साहित्यों में आद्यन्त प्रयोग होता रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ

1. विष्णु रेवीह यस्यैष देवता वैष्णवः स्मृत। शब्द क.द्रु. में उद्‌धृत

2. पितृ–भक्ता मातृः भक्ता जाति पोषणः तत्पराः। धर्मोदर्शनों ये च रोयास्तं वैष्णव जनाः। प.पु. क्रियायोग सार, 2 अध्याय श.क. वृ. 526

3. अष्टदंश पुराणानां श्रवणायत्फलं भवेद।

4. तत्फलं समावत्नोति वैष्णवोनात्र संशय। 18 / / 6 / 9

5. अथर्व. 7 / 2 / 7 / 3

6. यस्य श्री पूर्णा मधुना पदान्क्षीय माणा स्वस्थया मर्दान्त। ऋ.154 / 4

7. विष्णु स देवेस्यः इमां विक्रन्ति विचक्रमे श.ब्रा. 14 / 1 / 1 / 5

8. बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय लोकानुकम्पाय का भाव

9. हरिभाऊ उपाध्याय : भागवत धर्म पृ. 41

10. काव्य का वैष्णव व्यक्तित्व पृ. 83,

11. ऋग्वेद 10 / 191 / 2

12. विमला गुरू–मानववादः भारतीय परम्पराएं पृ. 15

13. ईशोपनिषद– (ऋग्वेद 5 / 60 / 5)

14. अथर्ववेद 3 / 30 / 1

15. अथर्ववेद 3 / 24 / 5

16. पाण्डुरंगराव– रामायण की सामाजिक संस्कृति, सन्मार्गः भारतीय 6. संस्कृति विशेषांक पृ. 60

17. महाभारत शांतिपर्व पृ.–220

18. संगम लाल पाण्डेय : फॉर क्राइटेरिया ऑफ ह्यूमैनिज्म

19. अरूण प्रकाश मिश्र– तुलसी का मानव वाद 92–93

20. रामचरित मानस

21. हुकुमचन्द : आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य

22. हुकुमचन्द : आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य पृ. 136

23. डॉ. गार्गी गुप्तः रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन, पृ. 385

24. वही पृ. 386

25. अरविन्द कुमार देसाई : भारतेन्दु और नर्गद : एक तुलनात्मक अध्ययन पृ. 108

26. प्रिय प्रवास, षोडश सर्ग, पृ. 42

27. वैदेही वनवास, सप्तम सर्ग पृ. 75

28. साकेत एकादश सर्ग पृ. 437

29. श्री बलदेव जी मिश्र

30. श्री द्वारिका प्रसाद मिश्र–कृष्णायम आरोहण काण्ड पृ. 469

31. वही पृ. 471